इकाई 6 वैदिक चिकित्सा विज्ञान तथा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के परिणाम

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 सारांश

6.3 बोध–अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप वैदिक चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित विषयों को जान सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त होगी।
- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्राचीन चिकित्सा पद्धति को समझ पाएंगे।
- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भिन्न–भिन्न प्रकार की चिकित्सा के बारे में जान सकेंगे।
- इस इकाई में आप प्राचीन चिकित्सा पद्धति और आधुनिक चिकित्सा पद्धति के परिणामों को जान सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सूर्य की किरणों से होने वाले लाभ को जान सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

वैदिक परम्परा में चिकित्सा विज्ञान एक अन्यतम विषय रहा है। मानवजीवन को चिकित्सा–विज्ञान ही सुखमय एवम् आनन्दमय से परिपूर्ण कर सकती है। संसार में केवल मात्र निरोगी और स्वस्थ शरीर ही व्यक्तियों को आयुष्यमान एवम् दीर्घायु प्रदान करते है। जिसका एक मात्र मूल साधन चिकित्सा–विज्ञान ही है। अतः चिकित्सा विज्ञान सुखमय एवम् स्वस्थमय जीवन के लिए मानवजीवन में सर्वोत्तम भुमिका निर्वाह करती है। इसलिए वैदिक कालीन परम्परा में चिकित्सा–विज्ञान एक अन्यतम विषय रहा है।

चिकित्सा, रोगनिवारण और रोगहरण की एक विधि एवम् कला तथा वैद्यक के महत्व की एक शाखा है। इसके उद्देश्य स्वास्थ्यरक्षण, रोगनिवारण, रोग–उन्मूलन, रोगों के उपद्रवों और दुष्परिणामों के निराकरण और यदि निराकरण न हो तो यथाशक्ति शमन है।

एक्युप्रेशर योग नेचुरोपैथी काउंसिल जलालपुर के संस्थापक डा0 श्री प्रकाश बरनवाल का कहना है कि ''चिकित्सक चिकित्सा करता है और प्रकृति रोगहरण करती है''। रोगों से बचने की रोगियों में शक्ति होती है, जिससे दवा न करने पर भी असंख्य रोगी नीरोग हो जाते है। चिकित्सा ऐसी होनी चाहिए कि वह रोगहरण की शक्तियों में कोई

बाधा न डाले, वरन् उसमें सहयोग दे। इसके लिये चिकित्साकर्म में अत्यंत व्यग्रता नहीं दिखानी चाहिए और नहीं रोगियों को नैसर्गिक शक्ति के भरोसे ही छोड़ना, या उत्साहहीन चिकित्सा करनी, चाहिए।

स्वास्थ्य को बनाए रखना और रोग तथा महामारियों को उत्पन्न न होने देना रोग निवारक चिकित्सा के अंतर्गत आता है। रोग हो जाने पर उसके नाश के लिये की जानेवाली चिकित्सा को रोगहारक चिकित्सा कहते हैं। जब रोगविज्ञान, विकृतिविज्ञान, द्रव्यगुण विज्ञान इत्यादि विषयों के सम्यक् ज्ञान पर चिकित्सा अधिष्ठित होती है तब उसे युक्तिमूलक चिकित्सा कहते हैं। परंपरागत अनुभव चिकित्सा का आनुभाविक चिकित्सा कहते हैं। चिकित्सा रोगहारक, लाक्षणिक हो सकती है।

चिकित्सा–विधियां

अथर्ववेद में चार प्रकार की औषधियों और चिकित्सा–विधियों का उल्लेख मिलता है। ये हैं :–

१. **आथर्वणी चिकित्सा–** इस चिकित्सा विधि का सम्बन्ध अथर्वन् या अथर्वा ऋषि से है। इस चिकित्सा विधि के विषय में मतैक्य नहीं है, परन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि यह शान्तियुक्त विधि से की जाने वाली चिकित्सा है। अथर्वा का अर्थ योगी है। इसमें ध्यान, मनन, चिन्तन और मनोयोग से होने वाली चिकित्सा का समावेश है। अतएव इसे मानस चिकित्सा विधि या Psycho & Therapy कह सकते हैं। इसमें मंत्रशक्ति, जप, पूजा–पाठ, आश्वासन प्रक्रिया आदि के द्वारा प्राणशक्ति की वृद्धि और रोगनाशन किया जाता है। इसमें मनोबल को प्रदीप्त करके इच्छाशक्ति से रोगों को नष्ट या क्षीणप्राय किया जाता है। अतः Auto & Suggestion की विधि भी इसके अन्तर्गत आती है।

२. **आंगिरसी चिकित्सा–** इसका संबन्ध अंगिरस् या अंगिरा ऋषि से है। इसकी दो व्याख्याएँ हो सकती हैं–

   क) अंगिरस् की व्याख्या गोपथ और शतपथ ब्राह्मण में अंग–रस की गई है। अंगों के रस से होने वाली चिकित्सा आंगिरसी है। इसमें अंगों का रस अर्थात् रक्त आदि दूसरों को चढ़ाना, शरीर में बाह्य रसों को पहुँचाना, शरीर में अन्य कार्यशील तत्त्वों को पहुँचाना, वृक्ष–वनस्पति आदि के पोषक तत्त्वों को शरीर में पहुँचाना, रोगी के शरीर में अन्य शक्ति–प्रेरक तत्त्वों को पहुँचाना आदि का समावेश होगा। अतः यह पद्धति कुछ अंशों तक Allopathic पद्धति से साम्य रखती है।

   ख) आंगिरस की दूसरी व्याख्या घोर कृत्यों से संबद्ध है। कौषीतकि ब्राह्मण, शांखायन श्रौतसूत्र, आश्वलायन श्रौतसूत्र और छान्दोग्य उपनिषद् में आंगिरस को घोर आंगिरस नाम से संबोधित किया गया है। अंगिरा ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्रों में व्रण–चिकित्सा, शत्रुनाशन, शत्रुसेनानाशन, मणि द्वारा समस्त रोगों शत्रुओं और राक्षसों के नाशन आदि का वर्णन है। यह भी वर्णन किया गया है कि ऋषि धोर होते हैं। इनकी दृष्टि और इनका चिन्तन सत्य है अर्थात् ये सूक्ष्मदृष्टि हैं।

   आंगिरस विधि से शल्यक्रिया या चीर–फाड़ (Surgery) की विधि ली जा सकती है। इसमें सूक्ष्म दृष्टि, क्रूर कृत्य अंग छेदन आदि की क्षमता और रोगों के ठीक कारणों आदि का ज्ञान अनिवार्य है।

३. **दैवी चिकित्सा–** पृथिवी आदि पंचतत्त्वों को देव कहते हैं। सूर्य, चन्द्र आदि भी देव हैं। अतः मृत्–चिकित्सा, जलचिकित्सा, अग्नि–चिकित्सा, वायु– चिकित्सा, सूर्य–चिकित्सा, प्राणायाम–चिकित्सा आदि चिकित्साएँ दैवी चिकित्सा के अन्तर्गत आती हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार इसे प्राकृतिक चिकित्सा या Naturopathy कह सकते हैं।

४. **मनुष्यजा या मानवी चिकित्सा–**यह मानवों द्वारा बनाई गई चिकित्सा है। इसमें मानवों द्वारा निर्मित चूर्ण, अवलेह, भस्म, कल्प, आसव, वटी आदि संमिलित हैं। यह चिकित्सा औषधि चिकित्सा है, अतः इसे Drug & Therapy कह सकते हैं।

चिकित्सा पद्धति

भारत में इस समय चिकित्सा की चार पद्धतियाँ प्रचलित हैं :

1. ऐलोपैथिक, 2. होमियोपैथिक, 3. आयुर्वैदिक, और 4. यूनानी।

ऐलोपैथिक

अंग्रेजों के भारत में आगमन के साथ–साथ ऐलोपैथिक पद्धति यहाँ आई और ब्रिटिश राज्यकाल में शासकों से प्रोत्साहन पाने के कारण इसकी जड़ इस देश में जमी और पनपी। आज स्वतंत्र भारत में भी इस पद्धति को मान्यता प्राप्त है और इसके अध्यापन और अन्वेषण के लिये अनेक महाविद्यालय तथा अन्वेण संस्थाएँ खुली हुई हैं। प्रति वर्ष हजारों डाक्टर इन संस्थाओं से निकलकर इस पद्धति द्वारा चिकित्साकार्य करते हैं। देश भर में इस पद्धति से चिकित्सा करने के लिये अस्पताल खुले हुए हैं और उच्च कोटि के चिकित्सक उनमें काम करते हैं।

होमियोपैथिक

अंग्रेजों के शासनकाल में ही होमियोपैथिक पद्धति इस देश में आई और शासकों से प्रोत्साहन न मिलने के बावजूद भी यह पनपी। इसके अध्यापन के लिये भी आज अनेक संस्थाएँ देश भर में खुल गई हैं और नियमित रूप से उनमें होमियोपैथी का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। अंग्रेजी शासनकाल में यह राजमान्य पद्धति नहीं थी, किंतु अब इसे भी शासकीय मान्यता मिल गई है।

आयुर्वैदिक पद्धति

भारत की प्राचीन पद्धति है। एक समय यह बहुत उन्नत थी, पर अनेक शताब्दियों से मुसलमानों और ब्रिटिश राज्यकाल में शासकों की ओर से प्रोत्साहन के अभाव में इसकी प्रगति रुक गई और यह पिछड़ गई। पर इसकी जड़ इतनी गहरी है कि आज भी देश के अधिकांश व्यक्तियों की चिकित्सा इसी प्रणाली से होती है। भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद आयुर्वेद के अध्ययन में शासन की ओर से कुछ प्रोत्साहन मिल रहा है और वैज्ञानिक आधार पर इसके अध्यापन ओर अन्वेषण के लिये प्रयत्न हो रहे हैं।

यूनानी चिकित्सा पद्धति

मुसलमानी शासनकाल में आई और कुछ समय तक मुसलमानी राज्यकाल में पनपी, पर ब्रिटिश शासनकाल में प्रोत्साहन के अभाव में यह शिथिल पड़ गई। फिर भी कुछ संस्थाएँ आज भी चल रही हैं, जिनमें यूनानी पद्धति के पठन पाठन का विशेष प्रबंध है।

विभिन्न प्रकार की चिकित्सा

जलचिकित्सा–

वेदों में ऋषि भृग्वंगिरा ने जल को चिकित्सा पद्धति रूपे में प्रतिपादन करते हुए कहा है कि– काया रूपी मानवजीवन में उत्पन्न होने वाली सभी प्रकार व्याधियों को निवारण करने वाली जल 'औषधि स्वरूप' है। अतः अथर्ववेद में निश्चित रूप से जल को 'सर्वोत्तम औषधि' कहा गया है। **आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः**। शारीरिक दृष्टि से यह जल मानव शरीर में विद्यमान सभी प्रकार दोषों से मुक्त करके आरोग्यता एवम् शुद्धता प्रदान करता है तथा शरीर में जल का प्रयोग नित्य प्रतिदिन करने से अपान वायु निम्न गति को प्राप्त करता है। **न्यग्वातो वाति न्यक् तपतिसूर्यः**। जिसका फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति बद्धकोष्ठता नामक व्याधि का नाश होता है। तत्पश्चात् संसार में प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण रूप में बद्धकोष्ठता से आरोग्यता को प्राप्त करता है।

वायु–चिकित्सा एवम् प्राणायाम – चिकित्सा

मानव जीवन का आधार प्राण है । प्राणों की सत्ता से ही जीवन की गतिविधियाँ हैं एवम् शरीर में बल, स्फूर्ति, उद्यम, उत्साह और ओजस्विता हैं । यदि प्राणशक्ति का संरक्षण, पोषण और संवर्धन किया जाए तो शरीर को व्याधियों से मुक्त किया जा सकता है । शरीर के कण–कण में प्राणों का समावेश है । इनकी शक्ति का ह्रास होने से ही शरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है, अतएव प्राकृतिक चिकित्सा में प्राणायाम – चिकित्सा को विशेष महत्त्व दिया गया है।

प्राणायाम का अभिप्राय है प्राणों की शक्ति का विस्तार । प्राणों का संबन्ध वायु से है । शरीर में प्राण की दो शक्तियाँ विशेष रूप से कार्य करती हैं प्राण और अपान । प्राणशक्ति श्वास के द्वारा वायु से आक्सिजन (Oxygen) ग्रहण करती है और फेफड़ों में पहुँचा कर समस्त कोशिकाओं को शुद्ध वायु के द्वारा पुष्ट करती है और निःश्वास के द्वारा फेफड़ों के दूषित तत्त्व को बाहर निकालती है । अपान वायु का कार्य है–शरीर के अन्दर व्याप्त दूषित तत्त्वों को मल–मूत्र के रूप में बाहर निकालना और शरीर को शुद्ध रखना । प्राण तत्त्व का काम धनात्मक है और अपान तत्त्व का काम ऋणात्मक । दोनों तत्त्व एक दूसरे के पूरक हैं। दूषित तत्त्वों के निर्गमन से जो स्थान रिक्त होता है, उसमें पोषक तत्त्व अपना स्थान ग्रहण करते हैं ।

वेदों में प्राणशक्ति का बहुत महत्त्व वर्णित है । प्राणों को संसार का स्वामी कहा गया है । यह चर–अचर सभी का स्वामी है । **प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणिति यच्च न** । प्राण में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है । प्राणों की शक्तिमत्ता नीरोगता का आधार हैं और उनकी अशक्तता विविध व्याधियों का कारण है । **प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।**

प्राण के दो रूपों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि एक अन्दर आता है. और दूसरा बाहर जाता । प्राण रूप में अन्दर आकर यह रुधिर को स्वच्छ करता है और अपान रूप में दोषों को शरीर से बाहर निकालता है । प्राण को ही मातरिश्वा और वायु भी कहते हैं । इसको शरीररूपी रथ को ढोने के कारण अनड्वान् (अनस–गाड़ी, रथ, वह–ढोना) कहा जाता है।

प्राणायान–चिकित्सा यह योग–चिकित्सा है । इसमें पूरक, रेचक और दो कुम्भकों का समावेश है । श्वास अन्दर लेने को 'पूरक' कहते हैं । श्वास बाहर छोड़ने को 'रेचक' और अन्दर एवम् बाहर रोकने को 'कुम्भक' (आभ्यन्तर कुम्भक और बाह्य कुम्भक) कहते हैं। श्वास को जितना अधिक अन्दर रोका जाएगा, उतना ही अधिक रक्त शुद्ध होगा। इससे शरीर में अधिक शक्ति का संचार होगा और पाचन शक्ति बढ़ेगी ।

मानस–चिकित्सा या मनोवैज्ञानिक चिकित्सा

मनुष्य का मन सुख और दुःख का कारण है। मन यदि शुद्ध है तो रोग–शोक आदि नहीं होते हैं। यदि मन अशुद्ध है तो नाना प्रकार के रोग होते हैं। चरक ने तीन प्रकार के रोग माने हैं–निज (वात–पित्तादिजन्य), आगन्तुक (अग्नि, विष आदि जन्य) और मानस (मानसिक विकार से जन्य)। चरक के अनुसार मानस दोष रजोगुण और तमोगुण के कारण होते हैं। इनके कारण ही काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या, मद, शोक, चिन्ता, उद्वेग, भय और हर्ष आदि होते हैं। मानस रोगों का कारण मन है, अतः इनकी चिकित्सा भी मानस ही उपयुक्त होती है। अथर्ववेद में मानस चिकित्सा का उल्लेख है कि वरुण देव ने मनोवैज्ञानिक उपचार के द्वारा चिकित्सा की।

मन की शक्तियाँ अनन्त हैं। मन असाध्य से असाध्य कार्य को साध्य बना देता है। मन मानव के हृदय में विद्यमान एक अक्षय ज्योति है। यह ज्योति आत्मिक बल, मनोबल एवम् इच्छाशक्ति देती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में मन को विराट्, ब्रह्म, परम ब्रह्म कहा गया है। अर्थात् मन ब्रह्म के तुल्य अनन्त शक्ति–संपन्न है। अथर्ववेद का कथन है कि मन ही रोग आदि का कारण है और वही उसका निवारक भी है। मनोबल का ह्रास ही रोग–शोक आदि का कारण है और उसका उत्थान इन दोषों का नाशक है। अतएव अथर्ववेद का कथन है कि मैं मनोबल के विकास के द्वारा मृत्यु के मुँख में पड़े हुए मित्र को बचा लाता हूँ और उसे पूर्ण सुरक्षा प्रदान करता हूँ।

यमादहं वैवस्वतात् सुबन्धोर्मन आभरम् ।
जीवातवे न मृत्यवे, अथो अरिष्टतातये ।। ऋग्० १०.६०.१०

मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के अन्तर्गत मनोबल के विकास के अतिरिक्त आश्वासन चिकित्सा और संकल्पचिकित्सा (Auto Suggestion) भी आते हैं। रोगी को आश्वासन देना और उसका मनोबल बढ़ाना भी चिकित्सा का एक प्रकार है। अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में इस प्रकार की आश्वासन चिकित्सा प्राप्त होती है– हे रोगी, तू भयभीत न हो, तू नहीं मरेगा। मैं तुझे जीवन देकर शतवर्ष की आयु दे रहा हूँ। 'तुम ओषधि लेते रहो, मैं तुम्हें दीर्घायु करता हूँ।

सोऽरिष्ट न मरिष्यसि, न मरिष्यसि मा बिभेः । अथर्व० ८.२.२४
मा बिभेर्न मरिष्यसि, जरदष्टिं कृणोमि त्वा । अथर्व० ५.३०.८

कुशल वैद्य आश्वासन – चिकित्सा के द्वारा रोगी का मनोबल बढ़ाते हैं और उसके रोग निवारण में सफल होते हैं।

संकल्प चिकित्सा भी मानस–चिकित्सा का एक प्रकार है। इसमें रोगी को कोई ओषधि न देकर उसके मनोबल को जागृत किया जाता है। मनुष्य का मनोबल उसके अन्दर एक अपूर्व चेतना जागृत करता है और रोगी अनुभव करता है कि वह उस रोग से मुक्त हो रहा है। रोगी का दृढ़ आत्मविश्वास रोगाणुओं को नष्ट करता है और रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करता है। पाश्चात्त्य जगत् में इस Auto Suggestion की विधि को

बहुत महत्त्व दिया जा रहा है और इसके द्वारा असाध्य रोगों को भी ठीक किया जा रहा है।

मन्त्र – चिकित्सा

मन्त्र–चिकित्सा ध्वनि तरंग चिकित्सा है। मंत्रों से जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, वे तरंग के रूप में ऊपर जाती हैं और सूर्य की सूक्ष्म शक्तियों को आत्मसात् करके साधक के शरीर में प्रविष्ट होती हैं। इन शक्तियों के प्रभाव से शरीर के रोग दूर होते हैं। संगीत में भी यही शब्दशक्ति कार्य करती है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने संगीत की सहायता से मनुष्यों और पशुओं के अनेक रोग दूर किये हैं। डॉ० एडवर्ड पोडोलास्की (न्यूयार्क) के अनुसार संगीत से रक्तसंचालन प्रभावित होता है। और शिराओं में नवजीवन का संचार होता है। इसके अभ्यास से जिगर और फेफड़े के रोग नहीं होते हैं।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में मंत्रशक्ति का उल्लेख है। ऋग्वेद का कथन है कि मन्त्र तेजोमय हैं। ये रोगों और रोगकृमियों को नष्ट करते हैं।' वेद मन्त्रों में इन्द्र आदि देवों का निवास है। गायत्री में अमृत का बीज है। गायत्री मंत्र को वरदा वेदमाता कहा गया है और उसके पाठ से दीर्घायु, प्राण, प्रजा, कीर्ति आदि की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। मन्त्रशक्ति से देवों ने असुरों को हराया। अग्नि मंत्रशक्ति से रोगकृमियों को नष्ट करता है। अथर्वा ऋषि को मन्त्रविद्या का विशेषज्ञ बताया गया है। उसके शिर में दिव्य शक्तियों का खजाना भरा हुआ था

वनस्पति चिकित्सा–

वैदिक जगत् में वनस्पति विज्ञान चिकित्सा का अभिन्न अंग है। क्योंकि यह वनस्पति विज्ञान भी चिकित्सा विज्ञान के समान मानव शरीर को स्वस्थ बनाये रखने, रोग हो जाने पर निरोगी करने तथा दीर्घायु करानें आदि अति–महत्त्व पूर्ण कार्य करते हैं।

अतः वेदों और ब्राह्मण–ग्रन्थों आदि में मानव चिकित्सा सम्बन्धित अनेकशः वनस्पतियों का उल्लेख प्राप्त हुआ है। इन वनस्पतियों की मानवजीवन में अवधान या उपयोगिता को देखते हुए ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण में वनस्पतियों को 'प्राण' कहा गया है। क्योंकि पृथिवी में केवलमात्र वृक्षादि वनस्पतियाँ ही सभी प्राणियों को प्राणशक्ति (आक्सीजन) प्रदान करती है। जिससे प्राणी समूह जीवित रहते हैं। अतः यह वनस्पति सभी प्राणियों के रक्षक एवम् पोषक तत्त्व है।

अतः वेदों में केशवर्धक समस्याएं , कुष्ठ, रक्तस्राव और कपक्षय आदि निवारण के लिए नितत्नी, अश्वत्थ और विषानक आदि वनस्पतियों का उल्लेख प्राप्त होता है। तथा इनसे भिन्न वात, उन्माद एवम् महाव्याधियों का नाश करने वाले पिप्पली वनस्पति, मज्जा , अस्थि तथा मांस सम्बन्धित रोगों नाशक रोहिणी वनस्पति और दूर्णाम कृमिओं को दुर करने वाले वज वनस्पति आदि वनस्पतियों का औषधि के रूप में प्रयोग करते थे। अतः वेदों में ऋषियों ने वृक्षादि वनस्पतियों को चिकित्सा विज्ञान के रूप में प्रतिपादन किया गया है।

कुष्ठ– चिकित्सा–

मनुष्यों के शरीर की विकृत–अवस्था के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों में कुष्ठ अन्यतम एवम् भयाभय रोग है। चरक संहिताकार आचार्य चरक के मतानुसार कुष्ठ रोग की उत्पत्ति मनुष्यों के शरीर में विद्यमान वात, पित्त, त्वचा, मांस, रक्त और लसिका आदि इन सप्त द्रव्यों के विकृत अवस्था के कारण होती है। **सप्त द्रव्याणि कुष्ठानां प्रकृ**

तिर्विकृतिमापन्नानिभवन्ति। आचार्य चरक ने जिनका विभाजन सप्त प्रकार से करते है। वे है– १.कपाल कुष्ठ २.उदुम्बर कुष्ठ ३.मण्डल कुष्ठ ४.ऋष्यजिह्व कुष्ठ ५.पुण्डरीक कुष्ठ ६.सिध्म कुष्ठ ७.काकणक।

इन सव कुष्ठ–रोगों की निवारण हेतु अथर्ववेद में ऋषि भृग्वंगिरा ने अश्वत्थ नामक औषधि उल्लेख करते हुए कहते हैं कि यह अश्वत्थ नामक औषधि द्युलोक में देवों के सदृश्य बैठने योग्य है। द्युलोक में देवों ने अदर्शनीय अमृत की पुष्प के सदृश्य कुष्ठ औषधि अश्वत्थ को देवों ने प्राप्त किया है। यह अश्वत्थ नामक औषधि हिमालय के ऊचे स्थानों में तथा पृथिवी के नदी आदि में उत्पत्ति होने के कारण इन्हें 'हिमालय एवम् पृथिवी के गर्भस्वरूपा' कहा जाता है। यह औषधि अत्यधिक बलशालिनी एवम् गुणकारिनी होने के कारण कुष्ठ–रोग का नाश करता है तथा शरीर निरोगी और स्वस्थ प्रदान करता है।

यज्ञ चिकित्सा

वेदों में यज्ञ को भी चिकित्सा का एक प्रकार माना गया है। यज्ञ में चार प्रकार के द्रव्य आहुति के रूप में डाले जाते हैं। ये हैं– १. सुगन्धित केसर, कस्तूरी, चन्दन आदि। २. पुष्टिकारक– घृत, दूध, फल, अन्न गेहूँ चावल आदि। ३. मिष्ट, शक्कर, छुहारा, किशमिश आदि। ४. रोगनाशक– गिलोय, गूगल, अपामार्ग आदि। इनमें रोगनाशक ओषधियाँ रोगों को नष्ट करने के लिए हैं। रोगों के अनुसार रोगनाशक विभिन्न ओषधियों का भी चयन किया जाता है।

वेदों में यज्ञों का बहुत अधिक महत्त्व वर्णन किया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि यज्ञ ही एक प्रकार है, जिसके द्वारा प्राकृतिक सन्तुलन बनाए रखा जा सकता। यज्ञों के द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा, वायुमंडल की पवित्रता, विविध रोगों का नाश, शारीरिक और मानसिक उन्नति, रोग–निराकरण के द्वारा दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। यजुर्वेद का कथन है कि सृष्टि में ऋतुचक्ररूपी यज्ञ नियमित रूप से हो रहा है, अतः सृष्टिचक्र की व्यवस्था है। इस महायज्ञ में वसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु समिधा है और शरद् ऋतु सामग्री (हवि) है। यह यज्ञ प्रक्रिया विश्व की नियामक है। सारे संसार में पंच तत्त्वों द्वारा यह दैव यज्ञ निरन्तर किया जा रहा है। सामान्य यज्ञ इसी महान् यज्ञ का प्रतीक है।

यज्ञ में रोगनाशक ओषधियाँ भी डाली जाती हैं, अतः यज्ञ की एक प्रमुख विशेषता रोगनाशन भी है। अथर्ववेद का कथन है कि जिस घर में नियमपूर्वक यज्ञ किया जाता है, वहाँ रोगकृमि स्वयं नष्ट हो जाते हैं। अपचित् (गंडमाला) रोग को दूर करने के लिए विधिपूर्वक मन लगाकर यज्ञ करना उपाय बताया गया है। यज्ञ में गूगल को डालने से सभी रोगों का नाश बताया गया है। अथर्ववेद का कथन है कि गूगल की सुगन्ध औषधि है और यह सभी रोगों को दूर करती है। इसी प्रकार अन्य रोगनाशक ओषधियों की सुगन्ध वायु के द्वारा फैफड़ों में पहुँचती हैं और शरीर के रोगों को नष्ट करती है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त यज्ञ चिकित्सा विषय पर दिया गया है। 'मैं यज्ञ के द्वारा रोगी को राजयक्ष्मा तथा अन्य अज्ञात रोगों से हूँ। यदि कोई छूत वाली बीमारी लगी है तो उसको भी यज्ञ के द्वारा दूर करता हूँ।'' 'मैं मरणासन्न व्यक्ति को भी यज्ञ के द्वारा मृत्यु के मुख मुक्त करता उसे शतायु बना देता हूँ। 'सौ वर्ष की आयु देने वाले यज्ञ के द्वारा मैं इसको छुड़ा लाता हूँ और मृत्यु से बचाकर लाया हूँ। यह सौ वर्ष जीवित रहेगा। इन्द्र इसे सारे दुःखों से पार लगाएगा।'' ''यज्ञ के द्वारा तुझे

नया जीवन प्रदान किया गया है। तेरे सारे अंगों को नीरोग करके तुझे पूर्ण आयु प्रदान की जा रही है।'' ''यज्ञ के द्वारा तेरे अन्दर प्राण और अपान शक्तियाँ प्रवेश करती हैं। इनके द्वारा तू सैकड़ों मृत्युओं को दूर भगाता है।

इससे ज्ञात होता है कि वैदिक ऋषियों ने यज्ञ का चिकित्सा के रूप में भी प्रयोग किया था।

यक्ष्म चिकित्सा–

वैदिक कालीन मानवजीवन में उपलब्ध प्राणघाती रोगों में यक्ष्मरोग अन्यतम व्याधि रहा है। क्योंकि यह रोग स्वस्थ शरीर में होने से शिर में व्यथा, मस्तक में पीडा, सुनाई कम देना, मस्तक सम्बन्धित सभी रोग, दोनों कानों के मध्य में कर्णशूल तथा शरीर टुटन आदि समस्याएं उत्पन्न करती है। जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति को अन्धापन तथा बहिरापन बना देता है। इसके अलवा यक्ष्म रोग व्यक्ति के शरीर के आन्तरिक सभी अङ्ग को भग्न करने वाला, समस्त अङ्ग में ज्वर उत्पन्न करने वाला, प्रत्येक अङ्ग को पीडा देना वाला तथा मस्तक सम्बन्धित सभी रोगों को उत्पन्न करने वाला है।

अतः वैदिक काल में यक्ष्म रोग का भयानक रूप मनुष्यों के हृदय को कम्पित करता है। क्योंकि यह यक्ष्म रोग मनुष्य के शरीर में एक वर्ष पर्यन्त रहता है। यह रोग मनुष्यों शरीर के दोनों जंघाओं को रंगता हुआ पार्श्वस्थ दोनों नाडियों मध्य में पहुँचता है। भयानक एवम् प्राणघाती यक्ष्मव्याधि का निवारण करने वाले दिव्यगुणों से युक्त वरण नामक औषधि को मानी जाती है। वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पति। जिन्हें संस्कृत भाषा में 'वरुण' भी कहा जाता है। यह वरण नामक औषधि रोगों को जीतने वाले, सौन्दर्य को रक्षक, शरीर में रहने वाले रोगों का नाश करने वाले, प्राणों का रक्षक और रोगों से उत्पन्न पीडा आदि दुःखों का नाश करने वाले आदि गुणों से युक्त है। तथा यह वरण औषधि श्लेष्मा, मूत्रदोष, वात–दोष, गुल्म, वातरक्त, कृमि–दोष रक्त–दोष और शिरोवात आदि रोगों को नाश करने वाला है। अतः वैद्यों लोक 'वरण नामक औषधी' से ही यक्ष्म रोग का उपचार करते हैं।

मृत्–चिकित्सा

प्राकृतिक पदार्थों में मिट्टी का भी चिकित्सा की दृष्टि से महत्त्व है। वेदों में चिकित्सा के लिए मिट्टी के उपयोग का विधान है। अथर्ववेद का कथन है कि दीमक समुद्र से मिट्टी बाहर निकालकर बभी बनाती हैं। यह बमी की मिट्टी आस्राव (रक्त प्रवाह, खून बहना) की दवा है।

उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ।। अथर्व० २.३.४

इसको रोगनाशक भी बताया है। इसका मलहम की तरह लेप भी किया जाता है और यह घाव को ठीक करती है। विषचिकित्सा के रूप में बमी की मिट्टी का उपयोग बताया गया है। 'सुश्रुतसंहिता कल्पस्थान में सर्पदेश में बमी की मिट्टी को दूध, घी, मधु के साथ मिलाकर पिलाने का विधान है। सुश्रुत का कथन है कि यदि अन्य औषधियों न मिलें तो बमी की काली मिट्टी का उपयोग करें। नारायण उपनिषद् में मिट्टी का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि मिट्टी में बहुत गुण हैं। यह शारीरिक पुष्टि देती है। मल्लविद्या के विशेषज्ञ मिट्टी को शारीरिक पुष्टि का आधार मानते हैं।

पाययेतागदांस्तांस्तान् क्षीरक्षौद्रघृतादिभिः ।
तदभावे हिता वा स्यात् कृष्णा वल्मीकमृत्तिका । सुश्रुत, कल्पस्थान ५.१७

मिट्टी का चिकित्सा के रूप में अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है– बुखार उतारने के लिए मिट्टी की लोई सिर पर रखी जाती है, उदरविकार और उदर शूल आदि में इसी प्रकार मिट्टी की लोई पेट पर बाँधी जाती है, रक्त प्रवाह बन्द करने के लिए मिट्टी लगाई जाती है, सर्पदंश आदि में उक्त प्रकार से मिट्टी का प्रयोग होता है।

सर्पविष चिकित्सा–

वैदिक जगत् में सर्पविष– चिकित्सा का उल्लेख प्राप्त होता है। इसलिए अथर्ववेद में १८ प्रकार सर्पों की जातियों का नाम प्राप्त होते हैं। वे निम्न प्रकार है– १.कैरात सर्प २. पृश्नि सर्प ३.उपतृण्य सर्प ४.बभ्रुसर्प ५. असीत सर्प ६. अलीक सर्प ७. तैमात सर्प ८.अपोदक सर्प ९.सत्रासाह सर्प १०. मन्यु सर्प ११.आलिगी सर्प १२. विलिगी सर्प १३. उरुगूला सर्प १४.असिक्नी सर्प १५.दद्रुषी सर्प १६. कर्णा सर्प १७.श्वावित् सर्प १८. खनित्रिमा सर्प। जिनमें ६ महाविषधारक, ६ मध्यम विषधारक और ६ अधमविषधारक सर्पों की जातियाँ है।

वेदों में सर्पों विष के दुष्परिणाम को देखते हुए ऋषियों ने मनुष्यादि सकल प्राणिमात्र के लिए सर्पों को 'शत्रु' कहा है। अतः ऋषि गरुमान ने इसप्रकार विषले सर्पों से समस्त प्राणियों को दुर रहने का निर्देश किया है। सर्प मनुष्यों को खात, अखात और सक्त इन तीन प्रकार से काटते हैं। तत्पश्चात जब प्राणियों के शरीर में प्रवेश करता है तब सर्पविष के दुष्परिणाम के कारण शरीर टेडा, शीतिल और कुरूप कर देता है। पश्चात् मृत्यु भी हो जाता है। अतः मनुष्यों तथा समस्त प्राणियों को सर्पविष तथा सर्पों से सदैव दुर रहना चाहिए।

इस प्रकार सर्प–विष के दुष्प्रभावों का नाश के लिए वेदों में वनस्पति आदि औषधियों से चिकित्सा पद्धतियों का उल्लेख प्राप्त होते हैं। जिनमें प्रमुख औषधि है– उपजीक, ताबुव, तस्तुव, अरंघुष, पैद्व, अपराजिता और वरणावती या वरण आदि औषधि। इनमें से उपजीक नामक औषधि मरुस्थल में पाया जाता है। यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम्। यह औषधि अधिक प्रभावशाली, गुणवर्धक, शीघ्रगामी, आरोग्यवर्धक तथा आयुर्वधक आदि उत्तम गुणों से युक्त है। इसलिए इसके उपयोग से मनुष्यों वैद्य विष का नाश करते हैं तथा मनुष्य स्वस्थ एवम् रोगमुक्त होता है। इस प्रकार विषनाशक उपजीक और ताबुव आदि औषधियों सर्पविष का नाश करते है।

हस्तचिकित्सा या हस्तस्पर्शचिकित्सा

ऋग्वेद और अथर्ववेद में हस्तस्पर्श से रोगनिवारण की विधि दी गई है। इस विधि की वर्तमान मेस्मरिज्म (Mesmerism) और हिप्राटिज्म (Hypnotism) से तुलना करने से ज्ञात होता है कि वेदों की इस हस्तस्पर्श चिकित्सा का इनसे बहुत साम्य है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद के अनुसार हस्तस्पर्श से रोग निवारण की विधि इस प्रकार हैः–शरीर में दो वायुएँ हैं–प्राण और अपान। इनमें से प्राणवायु शरीर को शक्ति प्रदान करती है और अपान वायु शरीर के दोषों को बाहर निकालती है। ये दोनों वायुएँ सभी प्रकार के रोगों की चिकित्सा हैं। रोग निवारण के – लिए रोगी की चिकित्सा करते समय अपने हाथों को फैलाना, अंगुलियों को खोलना, हाथों में आरोग्यदायक शक्ति का अनुभव करना, दोनों हाथों से रोगी के शरीर को छूना और साथ ही मन्त्र बोलना। हाथ से छूते समय यह कहना कि मेरे दोनों हाथ सुखदायी हैं, इनका स्पर्श लाभकारी है, ये तेरे सारे रोगों को दूर करेंगे, अब तेरे अन्दर शक्ति आ रही है और रोग दूर हो रहा है। इस प्रकार कहते हुए अंगुलियों से रोगी के शरीर को स्पर्श किया जाता है

और हाथ फेरा जाता है। इस विधि से मरणासन्न व्यक्ति तक को जिलाया जा सकता है।

सूर्यकिरण चिकित्सा–

वेदों में सूर्य से सम्बन्धित सूर्यकिरण चिकित्सा नामक चिकित्सा पद्धति का उल्लेख प्राप्त होता है। अन्य सब चिकित्सा पद्धतियों में सूर्यकिरण चिकित्सा अन्यतम है। जिस रोग का चिकित्सा चिकित्सा एवम् उपचार सूर्य की किरणों से की जाती है। उसे सौर चिकित्सा कहते हैं। वेदों में वैदिक ऋषियों ने सूर्य की कारणों के समीप रहने का निर्देश दिया है। क्योंकि सूर्य की किरणों में प्राणतत्त्व का निवास स्थान है। अतः जब समस्त प्राणियों में सूर्य की प्रथम किरण पडता है तब प्रत्येक प्राणियों प्राणतत्त्व का संचार होता है। जिससे मनुष्य नवीन ऊर्जा से सक्रिय होता है।

वे सूर्य की किरणे मनुष्यों के शरीर में विद्यमान एवम् शरीर को संक्रमित करने वाले रोगों के मूलबीज आदि दोषों का नाश करने वाला है। सूर्य की किरणे मनुष्यों के शरीर को सुख प्रदान करती है। तत्पश्चात् शरीर को हर क्षेत्र से सूर्य की किरणे स्वस्थ एवम् निर्रोगिता प्रदान करते हैं। प्रातःकालीन सूर्य रोगी के कपाल सम्बन्धित पीडा, हृदयस्थ रोग, मस्तक सम्बधित दर्द और अन्य अंगों की दर्द का नाश करता है। जब कोई व्यक्ति वस्त्रहीन होकर सम्पूर्ण शरीर को सूर्य की किरणे पडता है तब सूर्य की किरणे क्रिमी जनित रोगों को दुर करता है। इसप्रकार से सूर्य की किरणे मनुष्यों के शरीर को आरोग्यता से पूर्ण करता है। अतः वेदों में सूर्य की किरणों को 'दीर्घायु प्रदान करने वाला, सर्वरोगनाशक, स्वस्थवर्धक तथा बुद्धिवर्धक' कहा गया है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान

१. आध्यात्मिक दृष्टिकोण से आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का परिचय

अनादि काल से रोग एवम् उसके उपचारों के अध्ययन ने मानव जाति को आकर्षित किया है। आज आधुनिक चिकित्सा विज्ञान जैसे एलोपैथी, ने रोगोपचार की प्राथमिक विधि के रूप में व्यापक स्वीकृति एवम् ख्याति अर्जित की है। आधुनिक चिकित्सा के क्षेत्र में प्रगति ने विभिन्न रोगों के शारीरिक एवम् मनोवैज्ञानिक कारणों को स्पष्ट किया है। फिर भी, यह भी सत्य है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान आज भी अनेक रोगों के कारणों को पूर्णतया समझ नहीं पाया है।

२. आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की सीमाएं

जहां एक ओर किसी भी रोग के वास्तविक कारण समझना स्वाभाविक रूप से महत्वपूर्ण है। क्योंकि जैसे रोगोपचार में सहायता होती है। वहीं दूसरी ओर यह समझना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि दो में से एक व्यक्ति रोगी क्यों हो जाता है, जबकि दोनों को रोग होने के समान अवसर थे। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान प्रथम बिंदु के बारे में विस्तार से वर्णन करता है, लेकिन दूसरे बिंदु का अधिक वर्णन करने में वह असमर्थ है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अनेक बार रोग के उपचार का अर्थ रोग के लक्षण अथवा सूचक का उपचार करना होता है। इसलिए, अनेक रोगों में, लक्षणों को छिप (दब) जाने के पश्चात भी, रोगी को जीवन भर उपचार जारी रखने पडते हैं, जिससे लक्षण दबे रहें इसमें वास्तविक रोग का उपचार होता ही नहीं। चूंकि इसका कोई स्थायी उपचार नहीं होता, रोगी को उपचार से होने वाले दुष्प्रभाव के साथ–साथ रोग से उत्पन्न

शारीरिक एवम् मनोवैज्ञानिक तनाव भी सहन करना पडता है।

३. बेहतर स्वास्थ्य के लिए आध्यात्मिक उपचारों का महत्व

पारंपरिक भारतीय स्वास्थ्य प्रणाली आयुर्वेद बताता है कि, रोग के कारण तीन स्तरों पर हो सकते हैं, जैसे शारीरिक, मानसिक एवम् आध्यात्मिक में, आध्यात्मिक शोध के माध्यम से, हमें यह ज्ञात हुआ कि रोगों का मूल कारण मुख्यतः आध्यात्मिक स्वरूप का होता है। वास्तव में व्यक्ति को कोई विशिष्ट रोग होने का मूल कारण ८०% तक आध्यात्मिक स्वरूप का होता है। इन आध्यात्मिक कारणों में मृत पूर्वज अथवा अनिष्ट शक्तियां (भूत, राक्षस, दानव आदि), व्यक्ति का प्रारब्ध अथवा उसके कर्म भी सम्मिलित हो सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का आध्यात्मिक कारण भिन्न होता है। यही कारण है कि क्यों दो में से एक व्यक्ति रोगी हो जाता है, जबकि दोनों को रोग होने के समान अवसर थे।

साधना एवम् आध्यात्मिक उपचार , आध्यात्मिक मूल के रोगों से मुक्त होने का महत्वपूर्ण साधन है। चूंकि व्यक्ति को रोग होने का आध्यात्मिक कारण समझ पाना अथवा अनुभव कर पाना कठिन होता है, इसलिए रोगी व्यक्ति को अपने सामान्य निर्धारित चिकित्सकीय उपचार के साथ आध्यात्मिक उपचार करते रहने चाहिए। जब व्यक्ति साधना करने लगता है, तब उसका आध्यात्मिक स्तर बढने लगता है और उसकी आध्यात्मिक संरचना में, आतंरिक बदलाव होने लगते हैं। इसका प्रभाव मन एवम् देह पर भी होता है। इसका लाभ यह होता है कि, रोग से और उससे उत्पन्न होनेवाली अन्य समस्याओं से सुरक्षा में वृद्धि हो जाती है । उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति रोग के संपर्क में आ भी जाए, तो वह रोग के कारण होनेवाले शारीरिक एवम् मानसिक कष्ट से, साधना न करनेवाले व्यक्ति की तुलना में कम प्रभावित होता हैं साधना एवम् आध्यात्मिक उपचार न केवल रोग को ठीक करने में अपितु व्यक्ति के मन की आध्यात्मिक शुद्धि और उसे अधिक निस्वार्थ बनाने में सहायता करते हैं।

४. भविष्य में चिकित्सा विज्ञान से अधिक आध्यात्मिक उपचार का महत्व

विश्व इस समय अस्थिर स्थिति में है। अनेक संतों ने अपनी भविष्यवाणी में आगामी कुछ वर्षो में तीसरे विश्व युद्ध और अभूतपूर्व प्राकृतिक आपदाओं की संभावना जताई है। इस युद्ध के परिणामस्वरुप अनेक मूलभूत सुविधाओं का अभाव रहेगा। कारखाने बंद हो जाएंगे और चिकित्सा विज्ञान से निर्माण होनेवाली औषधियां अनुपलब्ध होंगीं उस समय, रोगोपचार के लिए लोगों को आध्यात्मिक उपचारों और उपलब्ध वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों पर ही निर्भर रहना पडेगा। इस दृष्टिकोण से, अभी से ही आध्यात्मिक उपचार को सीखना और उनका अभ्यास करना आवश्यक है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के परिणाम–

चिकित्सा विज्ञान मनुष्यादि समस्त प्राणियों की शरीर के आन्तरिक एवम् वाहिक रोग, स्वस्थ और उपचार से सम्बन्धित विषय रहा है। मानव जाति के अन्दर स्वाभाविक गुण है कि वह सदैव स्वयं को तथा अपने परिवार से सम्बन्ध रखने वाले सखा सम्बन्धियों को भी स्वस्थ रखना चाहते हैं। अतः वैज्ञानिक आदि चिकित्सक विदों ने नई आयाम की खोज एवम् विकास की जिसे हम आधुनिक कालीन चिकित्सा पद्धति के नाम से परिचित है। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली की विकास के साथ–साथ मेडिकल साईस में नई नई मशीनी तकनीकि का विकास हुआ। जिससे आधुनिक चिकित्सा प्रणाली की

विकास में नई गति एवम् दिशा मिली। इस नई चिकित्सा प्रणाली में रोगियों को मशीनी तकनीकि के द्वारा गुजारना पडता है। जिसके कारण समाज में आधुनिक चिकित्सा प्रणाली से एक नकारात्कम एवम् अन्य सकारात्मक परिणाम देखने को मिलते हैं। वे निम्न प्रकार है–

नकारात्मक परिणाम–

- आधुनिक चिकित्सा पद्धति के कारण मानवजाति में स्वस्थ के लिए असामान्य और अनावश्यक चिन्ताएँ। सामान्य ज्वर, सिरदर्द आदि अस्वस्थ के कारण ज्यादा चिन्तित होना।
- आधुनिक चिकित्सा पद्धति में लिंग–निर्धारण परीक्षण पद्धति का सफल होने कारण कन्या भ्रूण हत्या जैसे क्रुर अपराध की गति में सहायता मिलती है।
- आधुनिक चिकित्सा प्रणाली की बढती कीमत के कारण आर्थिक स्थिति से कमजोर निम्न वर्ग के एक मानव समूहों आधुनिक चिकित्सा की उपकारिता से दूरीकरण।
- आधुनिक चिकित्सा पद्धति के माध्यम से मानव शरीर में निहित एवम् उत्पन्न अस्वस्थ सम्बन्धित रोगों का चिकित्सा करने में सक्षम परन्तु समस्त मानव जाति के मानसिक एवम् आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित करने में अक्षमता नजर आती है।

सकारात्मक परिणाम–

- अंग प्रत्यारोपण की आधुनिक चिकित्सा में नई प्रणाली के कारण अंग विफलता से पीडित रोगियों के लिए नई जीवनदान स्वरूप है।
- आधुनिक चिकित्सा के लेजर सर्जरी के माध्यम से शरीर को बिना खोले ही सर्जरी करना सम्भव हो गया है।
- फोरेसिक चिकित्सा शव नामक परीक्षण से रोगी के किन–किन कारणों के मृत्यु हुई है। यह पता लगाने में सहायक है।
- आधुनिक चिकित्सा प्रणाली में मलेरिया, हेपेटाइटिस आदि बीमारियों का पता लगाने के लिए विभिन्न प्रकार तकनीकि रेडी–टू–यूज डायग्नोस्टिक किट विकास किया है। जिससे कम समय में बीमारियों की जाज हो सकें।

6.3 सारांश

उक्त चिकित्सा विज्ञान के विवेचन से यह ज्ञात होता है कि वैदिक जगत् में समाज की चिकित्सा सम्बन्धित आवश्यकताओं के प्रति विशेष ध्याण रखकर विवेचन किया गया है। वैदिक कालीन चिकित्सा पद्धति के माध्यम से सूर्य की किरणें, जल, नितत्नी, अश्वत्थ, विषाणक, रोहिणी, वज, वरण और उपजीक आदि औषधियों के उपयोग से रोगियों के बद्धकोष्ठता, कुष्ठ, यक्ष्म, वात, उन्माद, मज्जा और चर्मादि व्याधिरूपी दुःखों से निवारण करते है। इस प्रकार वैदिक चिकित्सा पद्धति समस्त प्राणियों का निस्वार्थ भाव निस्वार्थ–भाव प्राणों का संरक्षण, आरोग्यवर्धक और दीर्घायु प्रदान करते हैं।

आधुनिक कालीन चिकित्सा पद्धति के माध्यम से समाज में सकारात्मक एवम् नकारात्मक परिणाम दृष्टि–गोचर होता है। जिससे आधुनिक चिकित्सा पद्धति समाज में भ्रुण जैसे क्रुर अपराधों करने में सहायक सावित हुआ है तो दूसरे ओर फोरेसिक

चिकित्सा शव नामक परीक्षण से मृत्यु की सही कारणों को जान सकते हैं तथा हत्या जैसे कार्य करने वाले अपराधियों को दण्डित करने में सहायक होते है। अतः मानव समाज की कल्याण के लिए वैदिक चिकित्सा पद्धति एवम् आधुनिक चिकित्सा पद्धति अति–महत्त्व पूर्ण है।

6.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- चरकसंहिता, भाग १ और २, व्याख्या पं० काशीनाथ शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी सन् १९८३
- सुश्रुतसंहिता, भाग १ और २, व्याख्या –डा० अम्बिकादत्त शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी सन् १९८१, १९८२
- अष्टाङ्गहृदयम्, व्याख्या .कविराज अत्रिदेव गुप्त, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी सन् १९८७
- द्रव्यगुणविज्ञान, भाग ४, आचार्य प्रियव्रत शर्मा, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी १९८४
- अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र, पं० प्रियरत्न आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि), सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, दिल्ली १९४१
- वैदिक साहित्य में शल्यचिकित्सा, डा० रामजीत विश्वकर्मा, राहुल प्रकाशन, वाराणसी १९८६
- Economy of Plants in the Vedas, Rajiva Kamal, Common Wealth Publishers, New Delhi, १९८८।

6.5 बोध–अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न – चिकित्सा किसे कहते हैं?

उत्तर – चिकित्सा, रोगनिवारण और रोगहरण की एक विधि एवम् कला तथा वैद्यक के महत्व की एक शाखा है।

प्रश्न – वर्तमान में चिकित्सा की कितनी पद्धतियाँ प्रचलित हैं?

उत्तर – वर्तमान में इस समय चिकित्सा की चार पद्धतियाँ प्रचलित हैं– 1. ऐलोपैथिक, 2. होमियोपैथिक, 3. आयुर्वैदिक, और 4. यूनानी।

प्रश्न – कुष्ठ रोग क्या है? और यह किस कारण होता है?

उत्तर – मनुष्यों के शरीर की विकृत–अवस्था के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों में कुष्ठ अन्यतम एवम् भयाभय रोग है। चरक संहिताकार आचार्य चरक के मतानुसार कुष्ठ रोग की उत्पत्ति मनुष्यों के शरीर में विद्यमान वात, पित्त, त्वचा, मांस, रक्त और लसिका आदि इन सप्त द्रव्यों के विकृत अवस्था के कारण होती है। सप्त द्रव्याणि कुष्ठानां प्रकृतिर्विकृतिमापन्नानिभवन्ति।

प्रश्न – यक्ष्म रोग कौन–सी समस्याएं उत्पन्न करता है?

उत्तर – यह रोग स्वस्थ शरीर में होने से शिर में व्यथा, मस्तक में पीडा, सुनाई कम देना, मस्तक सम्बन्धित सभी रोग, दोनों कानों के मध्य में कर्णशूल तथा शरीर टुटन आदि समस्याएं उत्पन्न करती है। जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति को अन्धापन तथा बहिरापन बना देता है।